27

न्यायिक समीक्षा (Judicial Review)

न्यायिक समीक्षा के सिद्धांत की उत्पत्ति एवं विकास अमेरिका में हुआ। इसका प्रतिपादन पहली बार मारबरी बनाम मैडिसन (1803) के जटिल मुद्दों में हुआ जॉन मार्शल द्वारा, जो कि अमेरिकी सर्वोच्च न्यायालय के तत्कालीन मुख्य न्यायाधीश थे।

भारत में दूसरी ओर, संविधान स्वयं न्यायपालिका को न्यायिक समीक्षा की शक्ति देता है (सर्वोच्च न्यायालय एवं उच्च न्यायालयों को)। साथ ही सर्वोच्च न्यायालय ने घोषित कर रखा है कि न्यायिक समीक्षा की न्यायपालिका की शक्ति संविधान की मूलभूत विशेषता है, तथापि संविधान में मूलभूत ढांचे का एक तत्व है। इसलिए न्यायिक समीक्षा की शक्ति में संविधान संशोधन के द्वारा भी न तो कटौती की जा सकती है न ही इसे हटाया जा सकता है।

न्यायिक समीक्षा का अर्थ

न्यायिक समीक्षा विधायी अधिनियमनों तथा कार्यपाालिका आदेशों की संवैधानिकता की जांच की न्यायपालिका की शक्ति है जो केन्द्र और राज्य सरकारों पर लागू होती है। परीक्षणोपरांत यदि पाया गया कि उनसे संविधान का उल्लंघन होता है तो उन्हें अवैध, असंवैधानिक तथा अमान्य घोषित किया जा सकता है और सरकार उन्हें लागू नहीं कर सकती।

न्यायमूर्ति सैयद शाह मोहम्मद कादरी ने न्यायिक समीक्षा को निम्नलिखित तीन कोटियों में वर्गीकृत किया है[1]:

1. संविधानिक संशोधनों की न्यायिक समीक्षा।
2. संसद और एक विधायिकाओं द्वारा पारित कानूनों एवं अधीनस्थ कानूनों की समीक्षा।
3. संघ तथा राज्य एवं राज्य के अधीन प्राधिकारियों द्वारा प्रशासनिक कार्यवाही की न्यायिक समीक्षा।

सर्वोच्च न्यायालय ने विभिन्न मुकदमों में न्यायिक समीक्षा की शक्ति का उपयोग किया, उदाहरण के लिए, गोलकनाथ मामला (1967), बैंक राष्ट्रीयकरण मामला (1970), प्रिवीयर्स उन्मूलन मामला (1971), केशवानंद भारती मामला (1973), मिनर्वा मिल्स मामला (1980) इत्यादि।

वर्ष 2015 में सर्वोच्च न्यायालय ने 99वें संविधान संशोधन, 2014 तथा राष्ट्रीय न्यायिक नियुक्ति आयोग (NJAC), अधिनियम, 2014 दोनों को असंवैधानिक करार दिया।

न्यायिक समीक्षा का महत्व

न्यायिक समीक्षा निम्नलिखित कारणों से जरूरी है:

क. संविधान की सर्वोच्चता के सिद्धांत को बनाए रखने के लिए।

ख. संघीय संतुलन (केंद्र एवं राज्यों के बीच संतुलन) बनाए रखने के लिए।

ग. नागरिकों के मूल अधिकारों की रक्षा के लिए।

अनेक मामलों में सर्वोच्च न्यायालय ने देश में न्यायिक समीक्षा की शक्ति के महत्व पर बल दिया है। इस संबंध में उसके द्वारा किए गए कुछ प्रेक्षण निम्नवत हैं:

''भारत में संविधान ही सर्वोच्च है और किसी वैचारिक कानून की वैधता के लिए उसका संविधान के प्रावधानों एवं अपेक्षाओं के अनुरूप होना अनिवार्य है और न्यायपालिका ही तय कर सकती है कि कोई अधिनियम संवैधानिक है अथवा नहीं।''[2]

''हमारे संविधान में किसी विधायन की न्यायिक समीक्षा के ऐसे 'एक्सप्रेस प्रावधान' (express provision) हैं कि वह संविधान के अनुरूप है अथवा नहीं इस तथ्य का पता लगाया जा सके। यही बात मूल अधिकारों के लिए भी सत्य है जिनके लिए न्यायपालिका को संविधान ने जागरूक प्रहरी की भूमिका सौंपी है।''[3]

''जब तक मौलिक अधिकार अस्तित्व में है और संविधान का हिस्सा है, न्यायिक समीक्षा की शक्ति का उपयोग इस दृष्टि से भी आवश्यक है कि इन अधिकारों के द्वारा जो गारंटी प्रदान की गई है उनका उल्लंघन नहीं किया जा सके।''[4]

''संविधान सर्वोच्च विधि है, देश का स्थायी कानून और सरकार की कोई भी शाखा इसके ऊपर नहीं है। सरकार के समस्त अंग, चाहे वह कार्यपालिका हो, विधायिका हो अथवा न्यायपालिका संविधान से ही शक्ति और अधिकार पाते हैं और उन्हें अपने संवैधानिक प्राधिकार की सीमा में ही रहकर कार्य करना होता है। कोई भी व्यक्ति चाहे वह कितने भी ऊंचे पद पर क्यों न हो, कोई भी प्राधिकारी चाहे वह कितना भी शक्तिशाली हो, यह दावा नहीं कर सकता कि संविधान के अंदर उसे किस सीमा तक शक्ति प्राप्त है इसका न्यायकर्ता वह स्वयं ही होगा अथवा उसकी कार्यवाही संविधान द्वारा प्रावधानिक ऐसी शक्ति की सीमा में है। यह न्यायालय संविधान का अंतिम व्याख्याकर्ता है और इसी न्यायालय को यह निर्धारण करने की नाजुक जिम्मेदारी दी गई है कि सरकार की प्रत्येक शाखा को कितनी शक्ति प्राप्त है, कितनी यह सीमित है, यदि हां, तो इसकी सीमाएं क्या हैं और क्या उस शाखा की कोई कार्यवाही उस सीमा का उल्लंघन करती है।''[5]

''यह न्यायाधीशों का प्रकार्य है, उनका कर्तव्य है कि वे कानून की वैधता के बारे में अपना मत दें। यदि न्यायालय अपने इस अधिकार से वंचित हो जाते हैं, तब नागरिक के मौलिक अधिकार आडंबर मात्र बन कर रह जाएंगे क्योंकि उपचार के बिना अधिकार पानी पर लिखाई जैसा होगा। उस स्थिति में नियंत्रित संविधान अनियंत्रित हो जाएगा।''[6]

''सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीशों को संविधान को कायम रखने का दायित्व सौंपा गया है और इस स्थिति में उन्हें संविधान की व्याख्या करने की शक्ति भी मिली हुई है। इन्हें ही सुनिश्चित करना है कि संविधान में शक्ति के संतुलन की जो व्यवस्था की गई है, वह बनी रहे और यह कि विधायिका तथा कार्यपालिका अपने कर्तव्यों के निर्वहन में अपनी संवैधानिक मर्यादाओं का उल्लंघन नहीं कर पाएं।''[7]

''हमारे संस्थापक पूर्वजों ने, इसीलिए बुद्धिमानीपूर्वक स्वयं संविधान में ही न्यायिक समीक्षा का प्रावधान सम्मिलित कर दिया जिससे कि संघवाद का संतुलन कायम रहे, नागरिकों को दिए मौलिक अधिकार एवं मूल स्वतंत्रता की रक्षा हो सके और समता, स्वाधीनता और आजादी की उपलब्धता, उपलब्धि तथा आनंद हासिल करने का एक उपयोगी साधन हमारे पास हो और जिसकी मदद से हम एक स्वस्थ राष्ट्रवाद का सृजन करने में सफल हो सके। न्यायिक समीक्षा का कार्य अपने आप में संविधान की व्याख्या का ही हिस्सा है। यह संविधान को नई दशाओं तथा समय की मांग की अनुसार समायोजित करता है।''[8]

न्यायिक समीक्षा के लिए संवैधानिक प्रावधान

हालांकि संविधान में 'न्यायिक समीक्षा' शब्द का उपयोग कहीं नहीं हुआ है, तब भी कतिपय अनुच्छेदों के प्रावधान सर्वोच्च न्यायालय एवं उच्च न्यायालयों को न्यायिक समीक्षा की शक्ति प्रदान करते हैं। ये प्रावधान निम्नलिखित हैं:

1. अनुच्छेद 13 घोषणा करता है कि सभी कानून जो मूल अधिकारों की संगति में रहे हैं या उनका अपकर्ष करते हैं, निरस्त माने जाएंगे।
2. अनुच्छेद 32 मौलिक अधिकारों को लागू करने के लिए सर्वोच्च न्यायालय जाने के नागरिकों के अधिकार की गारंटी करता है, साथ ही सर्वोच्च न्यायालय को शक्ति देता है कि वह इसके लिए निदेश अथवा आदेश अथवा न्यायादेश जारी करे।
3. अनुच्छेद 131 केन्द्र-राज्य तथा अन्तर-राज्य विवादों के लिए सर्वोच्च न्यायालय का मूल क्षेत्राधिकार निश्चित करता है।
4. अनुच्छेद 132 संवैधानिक मामलों में सर्वोच्च न्यायालय का अपीलीय क्षेत्राधिकार सुनिश्चित करता है।
5. अनुच्छेद 133 सिविल मामलों में सर्वोच्च न्यायालय का अपीलीय क्षेत्राधिकार सुनिश्चित करता है।
6. अनुच्छेद 134 आपराधिक मामलों में सर्वोच्च न्यायालय का अपीलीय क्षेत्राधिकार सुनिश्चित करता है।
7. अनुच्छेद 134-ए उच्च न्यायालयों से सर्वोच्च न्यायालय को अपील के लिए प्रमाणपत्र (Certificate for appeal) से सम्बन्धित है।[9]
8. अनुच्छेद 135 सर्वोच्च न्यायालय को किसी संविधान पूर्व के कानून के अंतर्गत संघीय न्यायालय (Federal Court) के क्षेत्राधिकार एवं शक्ति का प्रयोग करने की शक्ति प्रदान करता है।
9. अनुच्छेद 136 सर्वोच्च न्यायालय को किसी न्यायालय अथवा न्यायाधिकरण से अपील के लिए विशेष अवकाश प्रदान करने के लिए अधिकृत करता है, सैन्य न्यायाधिकरण एवं कोर्ट मार्शल को छोड़कर।
10. अनुच्छेद 143 राष्ट्रपति को कानून सम्बन्धी किसी प्रश्न के तथ्य पर अथवा किसी संविधान-पूर्व के वैधिक (कानूनी) मामलों में सर्वोच्च न्यायालय की राय मांगने के लिए अधिकृत करता है।
11. अनुच्छेद 226 उच्च न्यायालयों को मौलिक अधिकारों को लागू करने या किसी अन्य प्रयोजन से निदेश, आदेश या रिट जारी करने की शक्ति प्रदान करता है।
12. अनुच्छेद 227 सर्वोच्च न्यायालयों को अपने-अपने क्षेत्रीय अधिकार क्षेत्र में सभी न्यायालयों एवं न्यायाधिकरणों (सैन्य अदालतों एवं न्यायाधिकारों को छोड़कर) के अधीक्षण की शक्ति प्रदान करता है।
13. अनुच्छेद 245 संसद एवं राज्य विधायिकाओं द्वारा निर्मित कानूनों की क्षेत्रीय सीमा तय करने से सम्बन्धित है।
14. अनुच्छेद 246 संसद एवं राज्य विधायिकाओं द्वारा निर्मित कानूनों की विषय-वस्तु से सम्बन्धित है (अर्थात् संघ सूची, राज्य सूची एवं समवर्ती सूची)।
15. अनुच्छेद 251 एवं 254 केन्द्रीय कानून एवं राज्य कानूनों के बीच टकराव की स्थिति में यह प्रावधान करता है कि केन्द्रीय कानून राज्य कानून के ऊपर बना रहेगा और राज्य कानून निरस्त हो जाएगा।
16. अनुच्छेद 372 संविधान-पूर्व के कानूनों की निरंतरता से सम्बन्धित है।

न्यायिक समीक्षा का विषय क्षेत्र

किसी विधायी अधिनियमन अथवा कार्यपालकीय आदेश की संवैधानिक वैधता को सर्वोच्च न्यायालय या उच्च न्यायालय में निम्न तीन आधारों पर चुनौती दी जा सकती है:

(क) यह मौलिक अधिकारों का उल्लंघन करता है,

(ख) यह उस प्राधिकारी की सक्षमता से बाहर का है जिसने इसे बनाया है, तथा;

(ग) यह संवैधानिक प्रावधानों के प्रतिकूल है।

उपरोक्त से स्पष्ट है कि, भारत में न्यायिक समीक्षा का विषय क्षेत्र संयुक्त राज्य अमेरिकी की तुलना में सीमित है, जबकि अमेरिकी संविधान अपने किसी भी प्रावधान में न्यायिक समीक्षा के विषय में कुछ नहीं करता। ऐसा इसलिए कि अमेरिकी संविधान में 'कानून की समुचित प्रक्रिया' को 'कानून द्वारा स्थापित पद्धति' के ऊपर तरजीह मिलती है जो कि भारतीय संविधान में अंतर्निहित है। दोनों के बीच अंतर है-''कानून की प्रक्रिया सर्वोच्च न्यायालय को नागरिकों के अधिकारों के संरक्षण में कहीं वृहद संभावना देती है। यह इन अधिकारों के उल्लंघनकारी कानूनों को निरस्त कर सकता है न केवल इस आकार पर कि उनके गैर-संवैधानिक होने के ठोस आधार मौजूद हैं, बल्कि उनके प्रक्रियागत आधार पर अविवेकपूर्ण होने के कारण भी हमारा सर्वोच्च न्यायालय एक कानून की संवैधानिकता का परीक्षण करते हुए, केवल एक ही प्रश्न की जांच करता है कि कानून वास्तव में

सम्बन्धित प्राधिकारों के शक्ति के अंतर्गत है या नहीं। कानून के विवेकपूर्ण, होने, इसकी उपयुक्तता अथवा नीतिगत प्रभावों से जुड़े प्रश्नों पर विचार नहीं होता।''[10]

अमेरिकी सर्वोच्च न्यायालय द्वारा 'समुचित कानूनी प्रक्रिया' के नाम पर न्यायिक समीक्षा की विशद शक्ति के कारण आलोचक इसे 'थर्ड चैम्बर ऑफ दि लेजिस्लेचर' कहते हैं। यानी एक महाविधायिका, सामाजिक नीतियों आदि का एकमात्र निर्णायक/न्यायिक सर्वोच्चता का यह अमेरिकी सिद्धांत हमारी संवैधानिक प्रणाली में भी मान्यता पाता है, लेकिन सीमित रूप में। हम संसदीय सर्वोच्चता के ब्रिटिश सिद्धांत का भी पूरी तरह अनुसरण नहीं करते। हमारे देश में संसद की संप्रभुता के संबंध में कई सीमाएं हैं यथा लिखित संविधान, शक्तियों का संघीय बंटवारा, मौलिक अधिकार और न्यायिक समीक्षा। वास्तव में भारत में दोनों अर्थात् अमेरिकी न्यायिक सर्वोच्चता सिद्धांत और ब्रिटिश संसदीय सिद्धांत की सर्वोच्चता का संमिश्रण है।

नवीं अनुसूची की न्यायिक समीक्षा

अनुच्छेद 31बी नवीं अनुसूची में शामिल अधिनियमों एवं विनियमों की किसी भी मौलिक अधिकार के उल्लंघन के आधार पर चुनौती देने एवं अवैध ठहराने से रक्षा करता है। अनुच्छेद 31बी तथा नवीं अनुसूची को पहले संविधान संशोधन अधिनियम, 1951 के द्वारा जोड़ा गया था।

मूल रूप में (1951 में) नवीं अनुसूची में केवल 13 अधिनियम एवं विनियम थे लेकिन वर्तमान में (2016 में) इनकी संख्या 282 है।[11] इनमें से राज्य विधायिका के अधिनियम एवं विनियम भूमि सुधार और जमींदारी उन्मूलन से संबंधित है, जबकि संसदीय कानून अन्य मामलों से।

हालांकि आर.आर. कोएल्हो मामले में दिए महत्वपूर्ण निर्णय (2007)[12] में सर्वोच्च न्यायालय ने व्यवस्था दी कि नवीं अनुसूची में शामिल कानूनों को न्यायिक समीक्षा से बाहर नहीं माना जा सकता। न्यायालय का कहना था कि न्यायिक समीक्षा संविधान की मूलभूत विशेषता है और इसे नवीं अनुसूची में शामिल किसी कानून के लिए वापस नहीं लिया जा सकता। न्यायालय की व्यवस्था के अनुसार 24 अप्रैल, 1973 के बाद नवीं अनुसूची में रखे गए कानूनों को चुनौती दी जा सकती है, अगर उनसे अनुच्छेद 14, 15, 19 और 21 के अंतर्गत प्रदत्त मौलिक अधिकारों अथवा 'संविधान की मूलभूत विशेषता' का हनन होता है। 24 अप्रैल, 1973 को ही सर्वोच्च न्यायालय ने पहली बार संविधान की मूलभूत विशेषता का सिद्धांत प्रतिपादित किया था, केशवानंद भारती मामले में अपने ऐतिहासिक फैसले में।[13]

उपरोक्त फैसला देते समय सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नलिखित निष्कर्ष निकाले:

1. कोई कानून जो संविधान के भाग III के अंदर गारंटी किए गए अधिकारों का हनन करता है, मूलभूत संरचना सिद्धान्त की अवहेलना करता रहता है, या नहीं भी कर सकता। यदि पहले की स्थिति किसी कानून का परिणाम है, जैसे-भाग III के किसी अनुच्छेद में संशोधन अथवा नवीं अनुसूची में शामिल करने से, तो ऐसा कानून न्यायालय की न्यायिक समीक्षा शक्ति के प्रयोग से निरस्त किया जा सकता है। संविधान की मूल संरचना के सिद्धांत की कसौटी पर नवीं अनुसूची के कानूनों की संवैधानिक वैधता का निर्णय प्रत्यक्ष प्रभाव परिक्षण को लागू कर अर्थात् अधिकार परीक्षण (right test) के आधार पर किया जा सकता है जिसका अर्थ है कि किसी संशोधन का स्वरूप कोई प्रासंगिक कारक नहीं है बल्कि असल निर्धारक है उस संशोधन का परिणाम।
2. केशवानंद भारती मामले[14] में बहुमत का फैसला इंदिरा गांधी मामले[15] के साथ पढ़ने पर स्पष्ट होता है कि प्रत्येक नये संविधान संशोधन की वैधता का निर्णय उसके अपने गुणों के आधार पर होना है। भाग III के अंतर्गत प्रदत्त अधिकारों पर बने कानूनों के वास्तविक प्रभावों का ध्यान रखना पड़ता है। यह निर्धारित करते समय करना होता है कि ये कानून संविधान के मूल ढांचे को क्षति पहुंचाते हैं। यह प्रभाव परीक्षण इस चुनौती की वैधता का निर्धारण करेगा।
3. 24 अप्रैल, 1973 को अथवा इसके बाद हुए सभी संविधान संशोधनों जिनके द्वारा नवीं अनुसूची में विभिन्न कानूनों को शामिल करके इसका संशोधन किया जाता है, का परीक्षण संविधान के मूल ढांचे या विशेषता की कसौटी पर किया जाएगा जैसा कि अनुच्छेद 21, सपठित अनुच्छेद 14 एवं अनुच्छेद 19 और उनमें सन्निहित सिद्धांतों प्रतिबिम्बित होता है। इसे दूसरी तरह से देखने पर अगर एक अधिनियम संविधान संशोधन द्वारा नवीं अनुसूची में डाल भी दिया जाता है, इसके प्रावधानों पर निशाना

साधा जा सकता है। इस आधार पर कि वे संविधान के मूल ढांचे को क्षति पहुंचा रहे हैं, अगर मौलिक अधिकारों का हनन हो रहा है।

4. नवीं सूची में शामिल कानूनों को संविधान संशोधन द्वारा संरक्षण (पूरा संरक्षण नहीं) प्रदान करने का औचित्य संवैधानिक न्याय निर्णय का एक मामला होगा, जिसमें किसी कानून द्वारा मौलिक अधिकार के हनन की प्रकृति और सीमा की जांच की जाएगी। यह परीक्षण अनुच्छेद 21 सपठित अनुच्छेद 14 एवं 19 में उल्लिखित मूल संरचना के सिद्धांत की कसौटी पर 'अधिकार परीक्षण' (rights test) तथा 'अधिकारों का सार' (exsence of the rights) का उपयोग करके भाग III के अनुच्छेदों के संक्षिप्त अवलोकन के आधार पर होंगे जैसा कि इंदिरा गांधी मामले[16] में किया गया था। उक्त परिमाण को नवीं सूची के कानूनों पर लागू करके अगर पाया जाता है कि अतिक्रमण से मूल ढांचे पर प्रभाव पड़ता है तब ऐसे कानून दो नवीं सूची का संरक्षण नहीं मिलेगा।

5. अगर नवीं अनुसूची के किसी कानून की वैधता को इस न्यायालय ने सही ठहराया है तो इस निर्णय द्वारा घोषित सिद्धांत पर ऐसे कानून को पुनः चुनौती नहीं दी जा सकती। तथापि भाग III का कोई कानून जिसे अधिकारों का उल्लंघनकारी ठहराया गया हो, 24 अप्रैल, 1973 के बाद नवीं अनुसूची में शामिल कर लिया गया हो तथा ऐसा उल्लंघन चुनौती देने के योग्य होगा, इस आधार पर कि यह संविधान की मूल संरचना को क्षति पहुंचाता है जैसाकि अनुच्छेद 21 सपठित अनुच्छेद 14 एवं 19 में तथा उनमें अंतर्निहित सिद्धांतों में इंगित किया गया है।

6. यदि अधिनियम को निरस्त करने के परिणाम में कार्यवाही हो चुकी है और लेन देन तय हो चुका हो, तो इसे चुनौती नहीं दी जा सकती।

24 अप्रैल, 1973 के पहले और बाद में नवीं अनुसूची में डाले गए अधिनियमों एवं विनियमों की संख्या तालिका 27.1 में निम्नवत दी गई है:

तालिका 27.1 *नवीं अनुसूची में शामिल अधिकारियों एवं विनियमों की संख्या*

क्रम संख्या	संशोधन संख्या (वर्ष)	नवीं अनुसूची में शामिल अधिनियमों एवं विनियमों की संख्या
I. 24 अप्रैल 1973 के पूर्व शामिल		
1.	पहला संशोधन (1951)	13 (1 से 13)
2.	चौथा संशोधन (1955)	7 (14 से 20)
3.	सातवां संशोधन (1964)	44 (21 से 64)
4.	उनतीसवां संशोधन (1972)	2 (65 से 66)
II. 24 अप्रैल 1973 के बाद शामिल		
5.	चौंतीसवां संशोधन (1974)	20 (67 से 86)
6.	उनचालिसवां संशोधन (1995)	38 (87 से 124)
7.	चालीसवां संशोधन (1976)	64 (125 से 188)
8.	सैंतालिसवां संशोधन (1984)	14 (189 से 202)
9.	छियासठवां संशोधन (1990)	55 (203 से 257)
10.	छिहत्तरवां संशोधन (1994)	1 (257ए)
11.	अठहत्तरवां संशोधन (1995)	27 (258 से 284)

नोट : प्रविष्टि (इंट्री) 87, 92 तथा 130 चौवालिसवें संशोधन (1978) द्वारा हटा दी गई।

संदर्भ सूची

1. न्यायमूर्ति सैयद शाह मोहम्मद कादरी, ''ज्युडिशियल रिव्यू ऑफ एडमिनिस्ट्रेटिव एक्शन'' (2001), 6 sec (J) पे-3
2. मुख्य न्यायाधीश केनिया, ए.के. गोपालन बनाम मद्रास राज्य मुकदमे (1950) में।
3. मुख्य न्यायाधीश पतंजलि शास्त्री मद्रास राज्य बनाम वी.जी. रॉ (1952) में।
4. न्यायमूर्ति खन्ना केशवानंद भारती बनाम केरल राज्य (1973) में
5. न्यायमूर्ति भगवती राजस्थान बनाम भारतीय संघ (1977) में।
6. मुख्य न्यायाधीश चंद्रचूड़ मिनर्वा मिल्स बनाम भारतीय संघ (1980) में
7. मुख्य न्यायाधीश अहमदी एल. चंद्रकुमार बनाम भारतीय संघ (1997) में
8. न्यायमूर्ति रामास्वामी एस.एस. बोला बनाम बी.डी. शर्मा (1997)
9. यह प्रावधान 44वें संविधान संशोधन अधिनियम 1978 द्वारा जोड़ा गया।
10. सुभाष सी. कश्यप और कंस्टीट्युशन, नेशनल बुक ट्रस्ट, तीसरा संस्करण, 2001, पे-232
11. यद्यपि अंतिम प्रविष्टि की संख्या 284 है, वास्तविक कुल संख्या 282 है। ऐसा इसलिए कि तीन प्रविष्टियां (87, 92 तथा 130) हटा दी गईं और एक प्रविष्टि की संख्या 257ए है।
12. आई.आर. कोएल्हो बनाम तमिलनाडु राज्य (2007)
13. केशवानंद भारती बनाम केरल राज्य (1973)
14. वही
15. इंदिरा नेहरू गांधी बनाम राज नारायण (1975)
16. वही